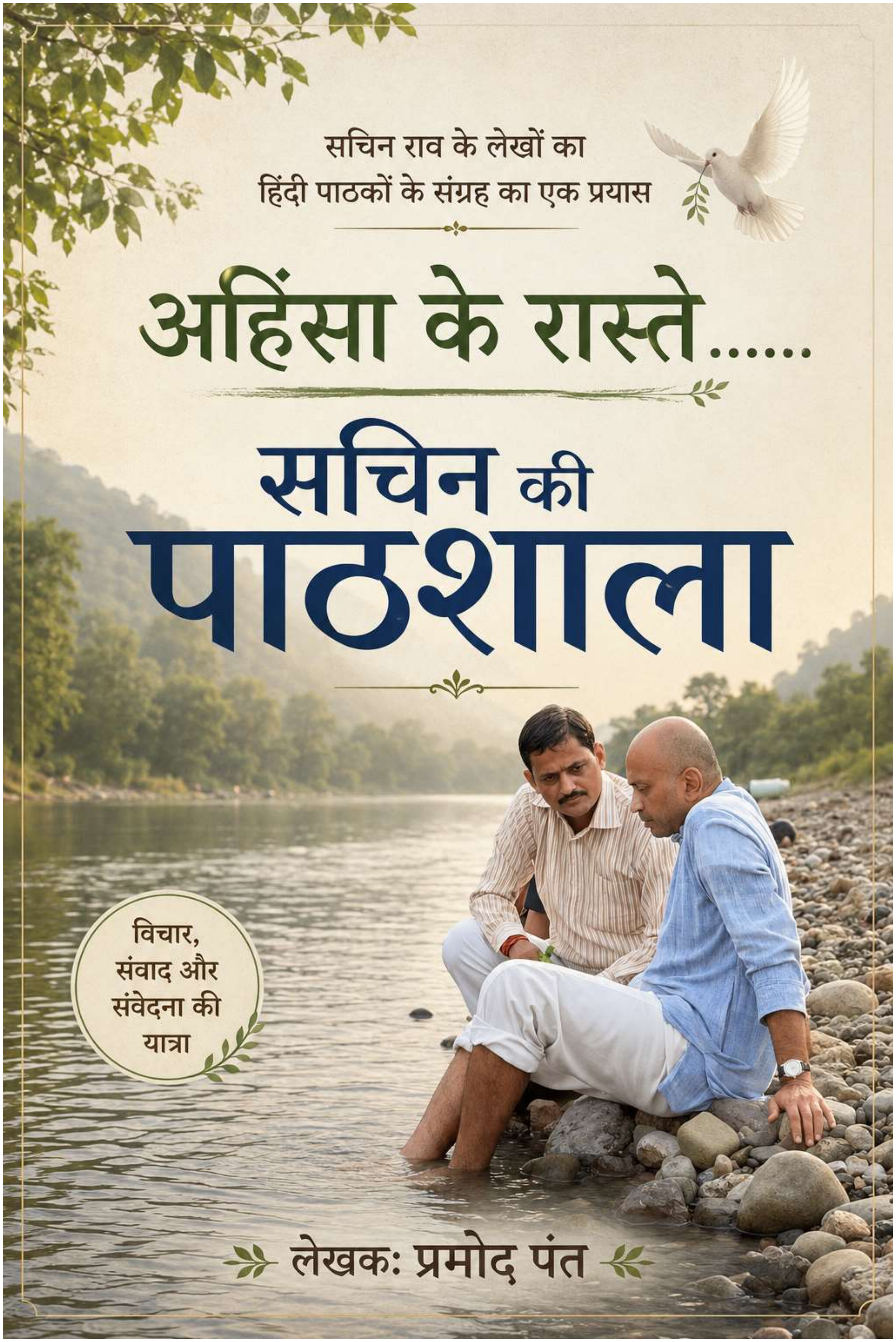
सचिन राव के लेखों का
हिंदी पाठकों के संग्रह का एक प्रयास
अहिंसा के रास्ते......
सचिन की
पाठशाला
विचार, संवाद और संवेदना की यात्रा
लेखकः प्रमोद पंत

प्रस्तावना

भारत की लोकतांत्रिक और सामाजिक चेतना में कुछ ऐसे विचारक और कार्यकर्ता उभरते हैं, जो केवल राजनीति की भाषा नहीं बोलते, बल्कि समाज को समझने और बदलने की नई दृष्टि भी देते हैं। सचिन राव, ऐसे ही व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने संगठन, संवाद, सामाजिक न्याय, संवैधानिक मूल्यों और अहिंसक परिवर्तन की प्रक्रिया को सरल भाषा में समझाने का प्रयास किया है।

"सचिन की पाठशाला" उसी विचार-यात्रा का हिंदी पाठकों के लिए एक विनम्र संकलन है। इस पुस्तक में संकलित लेख केवल राजनीतिक विमर्श नहीं हैं, बल्कि वे समाज निर्माण, नैतिक नेतृत्व, जनसहभागिता और लोकतांत्रिक चेतना की पाठशाला हैं।

आज के समय में जब संवाद की जगह शोर, और विचार की जगह तात्कालिक प्रतिक्रियाएँ बढ़ती जा रही हैं, तब सचिन राव के लेख हमें धैर्य, संवेदना और अहिंसक सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करते हैं।

पुस्तक का उद्देश्य

यह संग्रह हिंदी पाठकों तक उन विचारों को पहुँचाने का प्रयास है जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन, संवेदनशील नेतृत्व और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करते हैं।

यह पुस्तक विशेष रूप से–

- युवाओं
- सामाजिक कार्यकर्ताओं
- विद्यार्थियों
- पत्रकारों
- जनसंगठनों
- और जागरूक नागरिकों

के लिए उपयोगी हो सकती है।

"सचिन की पाठशाला" केवल लेखों का संग्रह नहीं, बल्कि समाज और लोकतंत्र को समझने की एक वैचारिक यात्रा है। यह पुस्तक अहिंसा, संवाद, सामाजिक न्याय और संवैधानिक मूल्यों के माध्यम से परिवर्तन की संभावनाओं को खोजती है। सरल भाषा में प्रस्तुत ये लेख पाठकों को सोचने, प्रश्न करने और समाज से जुड़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

प्रमोद पंत

जय हिंद। जय जगत।

1.

राजनीतिक विकल्प होने का अर्थ क्या है?

देश को एक वास्तविक राजनीतिक विकल्प देने के लिए मेरी अपनी पार्टी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, को भी अपनी मूल आत्मा को फिर से पहचानना होगा।

आजकल राजनीतिक चर्चाओं में “विकल्प” और विशेष रूप से “राष्ट्रीय विकल्प” जैसे शब्द बार-बार सुनाई देते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि देश में कोई मजबूत राष्ट्रीय विकल्प नहीं है, तो कुछ दावा करते हैं कि वे ऐसा विकल्प तैयार कर रहे हैं। कुछ दलों और नेताओं को भविष्य का राष्ट्रीय विकल्प बताया जा रहा है, जबकि कई स्वयं को ही उसका असली प्रतिनिधि मानते हैं।

लेकिन सवाल यह है कि आखिर “राजनीतिक विकल्प” का वास्तविक अर्थ क्या है?

अधिकांश लोगों के लिए इसका मतलब केवल इतना रह गया है कि चुनाव में भारतीय जनता पार्टी (BJP) या नरेंद्र मोदी के सामने किसी दूसरे चेहरे को खड़ा कर दिया जाए। परंतु केवल चेहरा बदल देने से कोई दल या नेता देश का वास्तविक राजनीतिक विकल्प नहीं बन जाता।

एक सच्चा राजनीतिक विकल्प वह होता है जो केवल सरकार के चेहरे नहीं बदलता, बल्कि उस पूरी सत्ता संरचना को बदलने का प्रयास करता है जो देश की दिशा तय करती है।

तीन प्रकार के वर्चस्व

आज देश की राजनीति और व्यवस्था पर तीन प्रकार के शक्तिशाली वर्चस्व हावी हैं।

1. आर्थिक वर्चस्व

यह वह शक्ति है जो तय करती है कि देश की संपत्ति, अवसर और संसाधनों का लाभ किन लोगों तक पहुंचेगा। आर्थिक फैसले कुछ चुनिंदा लोगों के हित में लिए जाते हैं।

2. सामाजिक वर्चस्व

यह तय करता है कि समाज में कौन सम्मानित माना जाएगा, किसकी आवाज़ सुनी जाएगी और कौन हाशिये पर रहेगा। समाज में प्रतिष्ठा और वैधता भी सीमित समूहों तक बांट दी जाती है।

3. राजनीतिक वर्चस्व

यह सत्ता के माध्यम से विरोध को दबाने, डराने और खरीदने का काम करता है, ताकि केवल कुछ खास आवाज़ें ही राजनीति में प्रभावी रहें। ये तीनों शक्तियां अलग-अलग नहीं हैं। इनके बीच आपसी सहयोग और साझा हित मौजूद हैं। यही गठजोड़ आज देश की बड़ी आबादी को हाशिये पर धकेल रहा है।

आज केवल विपक्षी दल ही नहीं, बल्कि लोकतंत्र की लगभग हर संस्था दबाव में दिखाई देती है – नौकरशाही, न्यायपालिका, मीडिया, विश्वविद्यालय, बाजार और यहां तक कि राजनीतिक दल भी। भाजपा भी अब एक स्वतंत्र राजनीतिक दल से अधिक उस सत्ता संरचना का चेहरा बनती जा रही है।

सबसे दुखद बात यह है कि इस पूरी प्रक्रिया ने भारत की हमारी सामूहिक समझ को भी बदल दिया है। भारत, जो कभी सभी लोगों का साझा घर माना जाता था, अब कई लोगों की सोच में एक ऐसी क्रोधित शक्ति में बदल दिया गया है जिसे लगातार “बलि” चाहिए। देशभक्ति का अर्थ भी लोगों के सपनों की रक्षा करने के बजाय विरोधियों की खोज तक सीमित होता जा रहा है।

आज की राजनीति की समस्याएं

आज राजनीति का बड़ा हिस्सा केवल सत्ता के केंद्र में जगह बनाने की होड़ बनकर रह गया है। इसके लिए कई तरीके अपनाए जा रहे हैं–

- धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के आधार पर समाज को बांटना
- शासन को केवल कुछ योजनाओं या “मॉडल” तक सीमित कर देना
- किसी एक व्यक्ति को मसीहा बनाकर प्रस्तुत करना
- चुनावी राजनीति को पेशेवर एजेंसियों और पैसों के भरोसे चलाना
- सत्ता और संस्थाओं का केंद्रीकरण कर विरोध को दबाना

इन सबके बीच आम जनता धीरे-धीरे राजनीति के केंद्र से बाहर होती जा रही है।

नागरिक से केवल वोटर तक

यदि यही स्थिति बनी रही, तो लोग सक्रिय नागरिकों से केवल वोट देने वाली भीड़ में बदल जाएंगे। फिर एक समय ऐसा आएगा जब जनता की राय भी सत्ता के अनुसार मोड़ी जाने लगेगी। यह लोकतंत्र के कमजोर होने और एक तरह से "नई गुलामी" की ओर बढ़ने जैसा है।

असली राजनीतिक विकल्प कैसा हो?

एक सच्चा राजनीतिक विकल्प केवल नया चेहरा नहीं होता। उसे–

- समाज को जोड़ने वाली नई सोच देनी होगी
- सत्ता का विकेंद्रीकरण करना होगा
- आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व को चुनौती देनी होगी
- लोगों को फिर से राजनीति का केंद्र बनाना होगा
- ऐसी राजनीतिक संस्थाएं बनानी होंगी जो जनता से निकलें और जनता के सपनों को शक्ति दें

इसके लिए राजनीति की भाषा, संगठन, संसाधन और कार्यशैली–सब कुछ नए सिरे से सोचना होगा।

यह केवल नेताओं का काम नहीं

राजनीति को बदलने का काम केवल राजनीतिक दलों या नेताओं पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह पूरे समाज का सामूहिक आंदोलन होना चाहिए, जिसमें युवाओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, किसानों, मजदूरों, शिक्षकों, उद्यमियों और आम नागरिकों–सभी की भागीदारी हो।

यह यात्रा कठिन होगी। इसमें व्यक्तिगत लाभ की गारंटी नहीं होगी। लेकिन यह देश और लोकतंत्र के भविष्य के लिए आवश्यक है।

कांग्रेस को भी खुद को बदलना होगा

सवाल पूछना क्यों जरूरी है?

भारत की आज़ादी की लड़ाई केवल अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष नहीं थी। यह अपने भीतर के डर, नफरत और गुलामी की मानसिकता के खिलाफ भी लड़ाई थी। महात्मा गांधी ने इसे “स्वराज” कहा – यानी केवल बाहरी शासन से मुक्ति नहीं, बल्कि अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता।

इस स्वराज की राह में सबसे बड़ा हथियार था – सत्याग्रह।

सत्याग्रह का अर्थ है लगातार सवाल पूछना।

- अपने डर पर सवाल करना
- अन्याय पर सवाल करना
- समाज की गलत परंपराओं पर सवाल करना
- और सबसे कठिन – अपने भीतर की नफरत पर सवाल करना

चंपारण, खेड़ा और दांडी जैसे आंदोलनों में यही भावना दिखाई दी। गांधीजी मानते थे कि अगर संघर्ष नफरत और हिंसा में बदल जाए, तो वह स्वतंत्रता नहीं बल्कि नई गुलामी पैदा करेगा।

राष्ट्र प्रेम और अंधभक्ति में फर्क

देश से प्रेम करना और देश को “देवता” बना देना – दोनों अलग बातें हैं।

एक लोकतांत्रिक राष्ट्र अपने नागरिकों को सोचने, बोलने और सवाल करने की स्वतंत्रता देता है। लेकिन जब सत्ता सवाल पूछने वालों को “राष्ट्रविरोधी” कहने लगे, तब लोकतंत्र कमजोर होने लगता है।

धीरे-धीरे देश को एक ऐसे “देवता” की तरह प्रस्तुत किया जाता है, जिसके सामने केवल सिर झुकाना है। फिर कुछ लोग तय करने लगते हैं कि “सच्चा राष्ट्रवाद” क्या है, कौन देशभक्त है और कौन नहीं।

ऐसी स्थिति में नागरिकों की जगह “भक्त” तैयार होने लगते हैं।

संविधान की असली भावना

भारत का संविधान हर व्यक्ति को सोचने, बोलने और अपने विचार रखने की आज़ादी देता है। संविधान का उद्देश्य ऐसा भारत बनाना था जहां हर व्यक्ति बिना डर के अपनी बात कह सके।

संविधान यह भी मानता है कि जाति, धर्म, गरीबी, लिंगभेद और सामाजिक असमानता जैसी ताकतें लोगों की स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। इसलिए हर नागरिक को सम्मान, अवसर और सुरक्षा मिलना जरूरी है।

हमारा संविधान भारत को एक "अरबों लोगों की बातचीत" के रूप में देखता है – जहां हर व्यक्ति अपनी बात कह सके और समाज मिलकर आगे बढ़े।

सवाल सत्ता को क्यों डराते हैं?

सवाल पूछना हमेशा सत्ता को चुनौती देता है। जब कोई व्यक्ति सवाल करता है, तो वह व्यवस्था से जवाब मांगता है। इससे एक ही विचार या एक ही "राष्ट्र की परिभाषा" को सब पर थोपना मुश्किल हो जाता है।

यही कारण है कि कई बार सत्ता सवाल पूछने वालों को बदनाम करने लगती है। उन्हें "देशद्रोही", "समस्या पैदा करने वाला", "विकास विरोधी" या "राष्ट्र के खिलाफ" बताया जाता है।

जब यह बातें बार-बार कही जाती हैं, तो समाज का एक हिस्सा यह मानने लगता है कि सवाल पूछना गलत है।

विश्वविद्यालयों की भूमिका

विश्वविद्यालय केवल डिग्री पाने की जगह नहीं होते, बल्कि स्वतंत्र सोच और संवाद की जगह होते हैं।

जो युवा खुलकर सोचने और सवाल करने लगते हैं, वे स्वाभाविक रूप से अन्याय और दमन का विरोध करते हैं। इसलिए जब विश्वविद्यालयों में विचारों की स्वतंत्रता पर हमला होता है, तो वह केवल छात्रों पर हमला नहीं होता – वह लोकतंत्र की आत्मा पर हमला होता है।

लोकतंत्र को बचाने की जरूरत

यदि नागरिकों को केवल “आज्ञाकारी भक्त” में बदल दिया गया, तो लोकतंत्र कमजोर हो जाएगा। सवाल पूछने की संस्कृति खत्म होने लगेगी और समाज डर, चुप्पी और अंधभक्ति की ओर बढ़ेगा।

भारत की असली ताकत उसकी विविधता, संवाद और लोकतांत्रिक परंपरा में है। इसलिए संविधान और लोकतांत्रिक संस्थाओं को बचाना आज सबसे बड़ी जरूरत है।

युवाओं के साथ खड़ा होना होगा

जो युवा और छात्र आज सवाल पूछने के अधिकार की रक्षा कर रहे हैं, वे केवल अपने लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए लड़ रहे हैं। इसलिए उन्हें समर्थन मिलना चाहिए।

वे उन लोगों से भी अपील करते हैं जो सवालों से डरते हैं कि वे अपने डर को छोड़ें और संवाद में शामिल हों।

क्योंकि–

“आपके पास खोने के लिए केवल अपनी जंजीरें हैं।”

जय हिंद। जय जगत।

(मूल लेख: 05/Mar/2016 thewire.in**)**

इस लेख को पढ़ने के बाद सामूहिक भागीदारी में चर्चा-परिचर्चा के विषय:--

"जब नागरिक सवाल पूछना छोड़ देते हैं, तब लोकतंत्र धीरे-धीरे भीड़तंत्र में बदलने लगता है।"

1. एक कांग्रेसी कार्यकर्ता की दृष्टि से **राजनीतिक विकल्प** होने का क्या अर्थ है?
2. देश की राजनीति और व्यवस्था पर कौन से तीन प्रकार के **शक्तिशाली वर्चस्व** हावी हैं?
3. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की **मूल आत्मा** क्या है?
4. नागरिकों को **भक्त** बनाने का खतरनाक खेल क्या है?
5. सवाल पूछने की आजादी और **लोकतंत्र की असली ताकत** क्या है?
6. **राष्ट्र प्रेम** और **अंधभक्ति** में फर्क क्या है?
7. **संविधान** की असली भावना क्या है?
8. सवाल **सत्ता** को क्यों डराते हैं?

2.

मनरेगा केवल रोजगार योजना नहीं, नागरिक अधिकारों का प्रतीक था

केंद्र सरकार द्वारा महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) की जगह "विकसित भारत - गारंटी फॉर रोजगार और आजीविका मिशन (ग्रामीण)" यानी VB-G RAM G लाने का प्रस्ताव केवल एक योजना परिवर्तन नहीं है। यह भारत के गरीब नागरिकों के अधिकारों की भावना पर सीधा प्रहार है।

मनरेगा वर्षों से करोड़ों गरीब ग्रामीण परिवारों के लिए जीवनरेखा रही है। यह केवल रोजगार देने वाली योजना नहीं थी, बल्कि इस बात का प्रतीक थी कि देश का गरीब नागरिक भी अधिकार रखता है – और सरकार उन अधिकारों को पूरा करने के लिए जवाबदेह है।

नई योजना का सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह लोगों के मन से "अधिकार" की भावना को खत्म करने की कोशिश करती है।

अधिकार खत्म होंगे तो नागरिक भी कमजोर होंगे

जब लोगों के मन से यह विश्वास खत्म हो जाता है कि उनके कुछ जन्मसिद्ध अधिकार हैं, तब वे सक्रिय नागरिक नहीं रह जाते। वे केवल ऐसे "प्रजा" बन जाते हैं जो सरकार की कृपा पर निर्भर रहती है।

लोकतंत्र की असली ताकत नागरिकों के अधिकारों में होती है। यदि लोग केवल सरकार की दया पर निर्भर हो जाएं, तो लोकतंत्र कमजोर होने लगता है।

गांधी और संविधान की मूल भावना

महात्मा गांधी ने कहा था– "मैं ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें सबसे गरीब व्यक्ति भी यह महसूस करे कि यह देश उसका है और उसे इसके निर्माण में अपनी आवाज़ रखने का अधिकार है।"

यह केवल गरीबी हटाने की बात नहीं थी। गांधी चाहते थे कि देश की असली शक्ति गरीबों और आम लोगों के हाथ में जाए।

इसी विचार को डॉ. भीमराव आंबेडकर ने संविधान में भी स्थान दिया। संविधान ने भारत को कुछ शक्तिशाली लोगों की जागीर से निकालकर जनता का गणराज्य बनाया।

संविधान ने लोगों को केवल वोट नहीं दिया, बल्कि अधिकार दिए।

मनरेगा क्यों महत्वपूर्ण था?

मनरेगा ऐतिहासिक कानून इसलिए था क्योंकि उसने "काम का अधिकार" दिया।

इस योजना के माध्यम से गांव का गरीब व्यक्ति सरकार से काम मांग सकता था। यदि सरकार काम देने में असफल रहती, तो उसे मुआवजा देना पड़ता।

यह व्यवस्था गरीब व्यक्ति को यह एहसास कराती थी कि वह सरकार पर निर्भर प्रजा नहीं, बल्कि अधिकार संपन्न नागरिक है।

ग्राम सभा की ताकत

मनरेगा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि गांव में कौन-सा काम होगा, इसका फैसला ग्राम सभा करती थी।

यानी निर्णय ऊपर से नहीं थोपा जाता था, बल्कि गांव के लोग मिलकर तय करते थे कि उनकी जरूरत क्या है।

यह ग्रामीण लोकतंत्र को मजबूत करने की दिशा में बड़ा कदम था।

मजदूरों को विकल्प और सम्मान

मनरेगा ने गरीब मजदूरों को केवल रोजगार नहीं दिया, बल्कि उन्हें एक विकल्प दिया।

जब गांव के मजदूरों को मनरेगा में काम मिलने लगा, तो स्थानीय बाजार में उनकी सौदेबाजी की ताकत बढ़ी। इससे वर्षों पुरानी जातिगत और सामंती व्यवस्था को चुनौती मिली।

गरीब व्यक्ति अब केवल मजबूरी में कम मजदूरी पर काम करने को बाध्य नहीं रहा।

नई योजना पर सवाल

नई VB-G RAM G योजना मनरेगा की मूल भावना से बिल्कुल अलग है।

- इसमें रोजगार की “गारंटी” कमजोर होती दिखाई देती है
- राज्यों पर 40% खर्च का बोझ डाला गया है, जिसे कई राज्य उठा नहीं पाएंगे
- ग्राम सभा की भूमिका कमज़ोर कर नौकरशाही को अधिक शक्ति दी गई है
- मजदूरों की जरूरत के समय योजना को सीमित करने की बात की जा रही है

यह पूरी व्यवस्था लोगों को अधिकार संपन्न नागरिक के बजाय सरकार की कृपा पर निर्भर प्रजा बनाने की दिशा में ले जाती है।

गांधी के नाम का इस्तेमाल क्यों अनुचित?

महात्मा गांधी का सपना गरीबों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शक्ति देना था।

यदि कोई योजना लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रता को कमजोर करती है, तो उसके साथ गांधीजी का नाम जोड़ना उनके विचारों का अपमान होगा।

शायद अच्छा ही हुआ कि नई योजना से “महात्मा गांधी” का नाम हटा दिया गया।

लोकतंत्र की असली चुनौती

लोकतंत्र केवल चुनावों से मजबूत नहीं होता। लोकतंत्र तब मजबूत होता है जब नागरिक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों और सरकार को जवाबदेह बना सकें।

यदि अधिकारों की जगह “कृपा” की राजनीति स्थापित हो गई, तो लोकतंत्र की आत्मा कमजोर पड़ जाएगी।

भारत का भविष्य इसी बात पर निर्भर करेगा कि देश के गरीब और आम लोग स्वयं को अधिकार संपन्न नागरिक मानते हैं या केवल सत्ता के सामने झुकने वाली प्रजा।

जय हिंद। जय जगत।

(मूल लेख) 09/Feb/2026 thewire.in

इस लेख को पढ़ने के बाद सामूहिक भागीदारी में चर्चा-परिचर्चा के विषय:--

"जब अधिकार कमजोर होते हैं, तब लोकतंत्र भी कमजोर होने लगता है।"

लोकतंत्र केवल सरकार चुनने का नाम नहीं है, बल्कि ऐसा समाज बनाने का प्रयास है जिसमें सबसे गरीब व्यक्ति भी सम्मान, अधिकार और भागीदारी महसूस करे।

1. "अधिकार आधारित शासन" **बनाम** "कृपा आधारित शासन" **में क्या फर्क है?**
2. नागरिक और प्रजा **में क्या अंतर है?**
3. **मनरेगा का** सामाजिक प्रभाव **क्या है? इस योजना से गांवों में मजदूरी और सम्मान बढ़ा। योजना ने ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन रोकने में किस तरह मदद करी।**
4. ग्राम सभा **और** स्थानीय लोकतंत्र **में मनरेगा की क्या भूमिका रही?**
5. **गांधी का** "अंतिम व्यक्ति" **का विचार क्या था?**
6. **नई योजना के** संभावित प्रभाव **क्या-क्या हैं?**
7. नागरिक भागीदारी **कैसे मजबूत हो सकती है?**
8. रोजगार गांरटी **कमजोर होने के क्या परिणाम हो सकते हैं?**

3.

इस बार 2 अक्टूबर, 30 जनवरी जैसा क्यों लग रहा है?

गांधी तभी बचेंगे, जब हम अपने भीतर के महात्मा को बचाए रखेंगे

महात्मा गांधी की सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने भारत की आत्मा में "अहिंसा" को स्थापित किया। उन्होंने केवल राजनीतिक आज़ादी की बात नहीं की, बल्कि ऐसे भारत का सपना देखा जहां शक्ति का उपयोग दमन के लिए नहीं, बल्कि मानवता और करुणा के लिए हो।

आज जब हम गांधी जयंती मनाते हैं, तो यह सवाल हमारे सामने खड़ा है कि क्या हम सचमुच गांधी के रास्ते पर चल रहे हैं? या फिर धीरे-धीरे हम उस रास्ते से दूर होते जा रहे हैं?

अहिंसा का असली अर्थ

अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा न करना नहीं है।
यह उससे कहीं गहरा विचार है।

अहिंसा का मतलब है–

- किसी पर अत्याचार न करना
- किसी अन्याय को चुपचाप स्वीकार न करना
- डर, नफरत और लालच से खुद को मुक्त करना
- और हर व्यक्ति की मानवता का सम्मान करना

गांधी मानते थे कि हिंसा केवल पीड़ित को ही नहीं, अत्याचारी को भी कैद कर देती है।
जो दबाया जाता है, वह डर और बेबसी में जीता है।
और जो दबाता है, वह सत्ता और लालच का गुलाम बन जाता है।

अहिंसा इन दोनों को मुक्त करने का रास्ता है।

संविधान में अहिंसा की झलक

भारत का संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं है। यह गांधी और स्वतंत्रता आंदोलन की उस सोच का परिणाम है जिसमें हर व्यक्ति को बराबरी, सम्मान और अधिकार देने का सपना था।

सोचिए, देश आज़ादी के समय कितना गरीब, अशिक्षित और बंटा हुआ था।
फिर भी संविधान निर्माताओं ने–

- सबको वोट का अधिकार दिया
- बराबरी का अधिकार दिया
- दलितों, आदिवासियों और वंचितों के लिए विशेष संरक्षण दिए
- किसी एक धर्म को राष्ट्रधर्म नहीं बनाया
- वैज्ञानिक सोच और तर्क की बात की

यह सब उस समय बहुत क्रांतिकारी फैसले थे।

दुनिया के कई देशों में सत्ता कुछ लोगों के हाथों में सीमित रही, लेकिन भारत ने एक अलग रास्ता चुना – सभी को साथ लेकर चलने का रास्ता।

आज का बदलता माहौल

आज का समय उस सोच से अलग दिखाई देता है।

आज समाज में कई जगहों पर ऐसा माहौल बन रहा है जहां–

- अल्पसंख्यकों को लोकतांत्रिक जगहों से बाहर किया जा रहा है
- किसानों और आदिवासियों की आवाज़ दबाई जा रही है
- महिलाओं की स्वतंत्रता पर सवाल उठाए जा रहे हैं
- असहमति रखने वालों को राष्ट्रविरोधी कहा जा रहा है
- पत्रकारों, छात्रों और विचार रखने वालों को निशाना बनाया जा रहा है

यह सब केवल राजनीतिक घटनाएं नहीं हैं। यह समाज के भीतर बढ़ती असहिष्णुता और कठोरता का संकेत हैं।

“धार्मिक युद्ध” जैसी राजनीति

आज कई मुद्दों को नैतिक या धार्मिक युद्ध की तरह प्रस्तुत किया जाता है।

सवाल पूछे जाते हैं–

- क्या भ्रष्टाचार खत्म नहीं होना चाहिए?
- क्या आतंकवाद खत्म नहीं होना चाहिए?
- क्या बेटियों की सुरक्षा जरूरी नहीं?
- क्या गाय की रक्षा नहीं होनी चाहिए?

इन सवालों के पीछे अक्सर एक “दुश्मन” खड़ा कर दिया जाता है। फिर उस समूह को समाज की हर समस्या का कारण बताया जाता है।

धीरे-धीरे लोगों के मन में उस समूह के प्रति घृणा पैदा की जाती है।

नफरत का सामान्यीकरण

सबसे बड़ा खतरा यह है कि नफरत धीरे-धीरे सामान्य लगने लगती है।

जब हम किसी व्यक्ति या समूह को पूरी तरह “गलत” मान लेते हैं, तब उसके प्रति करुणा खत्म होने लगती है।

और यही वह क्षण होता है जब अहिंसा हमारे भीतर से कम होने लगती है।

यह प्रक्रिया अचानक नहीं होती।
यह छोटे-छोटे व्यवहारों से शुरू होती है–

- सोशल मीडिया पर अपमान
- चुपचाप नफरत को स्वीकार करना
- दूसरों के दुख पर संवेदनहीन हो जाना
- असहमति रखने वालों का मज़ाक उड़ाना

गांधी को बचाने का अर्थ

गांधी को केवल तस्वीरों, भाषणों या सरकारी कार्यक्रमों से नहीं बचाया जा सकता।

गांधी तभी बचेंगे जब–

- हम अपने भीतर करुणा बचाए रखें
- डर और घृणा से ऊपर उठें
- हर व्यक्ति की मानवता को स्वीकार करें
- और असहमति रखने वालों से भी संवाद बनाए रखें

यहां तक कि गांधी के विरोधियों या गोडसे की विचारधारा मानने वालों के प्रति भी घृणा नहीं, बल्कि मानवता और संवाद का रास्ता अपनाना होगा।

2 अक्टूबर और 30 जनवरी

इस समय का माहौल उन्हें 2 अक्टूबर (गांधी जयंती) से अधिक 30 जनवरी (गांधी की हत्या का दिन) की याद दिलाता है।

क्योंकि आज खतरा गांधी के शरीर को नहीं, बल्कि उनके विचारों को है।

नाथूराम गोडसे की गोलियों ने गांधी के शरीर को खत्म किया था।
लेकिन यदि समाज में नफरत, असहिष्णुता और हिंसा बढ़ती रही, तो गांधी के आदर्श भी धीरे-धीरे कमजोर पड़ जाएंगे।

अंत में

गांधी ने भारत को ऐसा रास्ता दिखाया था जिसमें हर व्यक्ति को अपने सत्य की खोज करने की स्वतंत्रता मिले।

आज उस विचार को बचाने की जिम्मेदारी हम सबकी है।

गांधी को सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि हम अपने भीतर के “महात्मा” को जीवित रखें।

जय हिंद। जय जगत।

02/Oct/2017 thewire.in

इस लेख को पढ़ने के बाद सामूहिक भागीदारी में चर्चा-परिचर्चा के विषय:--

"गांधी को बचाना मतलब अपने भीतर संवाद, संवेदना और साहस को बचाए रखना।"

अहिंसा का अर्थ केवल किसी को न मारना नहीं, बल्कि किसी को अमानवीय न बनने देना भी है। क्या हम ऐसा समाज बना रहे हैं जहां इंसान की मानवता बची रहे?

1. आज के समय में गांधी की **अहिंसा** का क्या अर्थ है?
2. असहमति का अधिकार क्यों जरूरी है? क्या **नागरिक स्वतंत्रतता** धीरे-धीरे सीमित हो रही है।
3. क्या चुप रहना भी **हिंसा** का हिस्सा बन सकता है?
4. युवा समाज में **संवाद** और **सहिष्णुता** कैसे बढ़ा सकते हैं?
5. गांधी को "**व्यक्ति**" नहीं, "**विचार**" के रूप में देखने के लिए क्या प्रेरित करता है?
6. समाज से **जुड़ना** और **संवाद** क्यों जरूरी है?

4.

भारत जोड़ो यात्रा : रोज़मर्रा की राजनीति से आगे, भारत के विचार को फिर से जगाने वाला जनमेला

चीन के पूर्व प्रधानमंत्री झोउ एनलाई से एक बार फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव के बारे में पूछा गया था। कहा जाता है कि उन्होंने जवाब दिया –
"इसके प्रभाव को समझने के लिए अभी बहुत जल्दी है।"

भारत जोड़ो यात्रा समाप्त हुए अभी कुछ ही समय हुआ है। जब भी कोई मुझसे पूछता है कि इस यात्रा का प्रभाव क्या रहा, मुझे यही कहानी याद आती है।

विशेष रूप से तब, जब राहुल गांधी द्वारा राजनीति और लोकतंत्र को नए तरीके से देखने की कोशिशों पर आज भी सतही प्रतिक्रियाएं और शोर-शराबा सुनाई देता है।

लेकिन भारत जोड़ो यात्रा केवल रोज़मर्रा की राजनीति नहीं थी।
यह एक अलग प्रकार का जनआंदोलन था।

इस यात्रा का संदेश और उससे जुड़ी ऊर्जा ने समाज के दूर-दराज़ हिस्सों तक असर डाला। उसके प्रभाव की गूंज आने वाले लंबे समय तक भारतीय राजनीति और समाज में सुनाई देती रहेगी।

आज शायद हम पूरी तरह नहीं समझ सकते कि इस यात्रा का अंतिम प्रभाव क्या होगा। लेकिन इतना जरूर किया जा सकता है कि हम यह समझने और दर्ज करने की कोशिश करें कि यह यात्रा वास्तव में थी क्या।

रास्तों पर हर दिन दिखने वाला दृश्य

कन्याकुमारी से श्रीनगर तक की लंबी यात्रा में एक दृश्य बार-बार सामने आता था।

रास्ते के किनारे लोग घंटों खड़े होकर यात्रियों का इंतजार करते थे। जैसे ही यात्रियों का समूह पास आता, लोगों के चेहरे खिल उठते। उनकी आंखें भीड़ में किसी खास चेहरे को तलाशने लगतीं – वह चेहरा जो अब लंबी दाढ़ी के साथ पूरे देश में पहचान बन चुका था।

जब उन्हें पता चलता कि राहुल गांधी उस समूह में नहीं हैं, तो उनके उत्साह में हल्की सी कमी आ जाती। फिर भी वे मुस्कुराकर हाथ हिलाते, शुभकामनाएं देते और एक ही सवाल पूछते–

"राहुल जी कितनी दूर हैं?"

इसके बाद उनकी नजरें फिर पीछे की ओर टिक जातीं।

केवल एक नेता को देखने की उत्सुकता नहीं

यह मान लेना गलत होगा कि लोग केवल किसी प्रसिद्ध व्यक्ति को देखने आए थे।

उनकी आंखों में जो अपनापन था, वह केवल उत्सुकता नहीं थी।
उनकी प्रतीक्षा में जो धैर्य था, वह केवल राजनीतिक समर्थन नहीं था।

वह एक गहरे भावनात्मक जुड़ाव का संकेत था।

लोग राहुल गांधी में केवल एक नेता नहीं देख रहे थे। वे किसी ऐसे व्यक्ति से जुड़ना चाहते थे जिसके साथ वे अपने भीतर का कोई साझा भाव महसूस करते थे।

यह रिश्ता उस लंबे समय के बावजूद बना रहा, जब लगातार राजनीतिक हमलों और प्रचार के जरिए उनकी छवि को नुकसान पहुंचाने की कोशिशें की गईं।

यात्रा ने लोगों को क्या दिया?

भारत जोड़ो यात्रा ने लोगों को केवल राजनीतिक भाषण नहीं दिए। उसने लोगों के सामने एक चुनौती रखी–

- अपनी आज़ादी को फिर से पहचानने की चुनौती
- अपने अधिकारों और अपनी भूमिका को फिर से समझने की चुनौती
- अपने मूल्यों को याद करने की चुनौती
- और सबसे महत्वपूर्ण – डर के माहौल में सच बोलने का साहस जुटाने की चुनौती

"डरो मत" केवल एक नारा नहीं था।
यह लोगों को अपने भीतर के डर से मुक्त होने का आमंत्रण था।

राजनीति से आगे का अनुभव

यह यात्रा चुनावी राजनीति से कहीं बड़ी दिखाई दी। यह लोगों को जोड़ने, संवाद शुरू करने और भारत के विचार को फिर से जीवित करने का प्रयास थी।

रास्तों पर चलते हुए यह महसूस होता था कि भारत केवल सीमाओं से बना देश नहीं है। भारत करोड़ों लोगों की भावनाओं, सपनों, संघर्षों और आपसी रिश्तों से बनता है।

यात्रा ने लोगों को याद दिलाया कि लोकतंत्र केवल वोट देने का नाम नहीं है। लोकतंत्र संवाद, सह-अस्तित्व और एक-दूसरे को सुनने की संस्कृति का नाम है।

भारत का विचार

भारत जोड़ो यात्रा ने शायद सबसे बड़ा काम यह किया कि उसने "भारत" को केवल एक राजनीतिक नारे से आगे ले जाकर एक जीवित विचार के रूप में सामने रखा।

एक ऐसा भारत–

- जहां डर के बजाय संवाद हो
- जहां नफरत के बजाय अपनापन हो
- जहां असहमति को दुश्मनी न माना जाए
- और जहां हर व्यक्ति अपनी आवाज़ के साथ सम्मानपूर्वक खड़ा हो सके

अंत में

भारत जोड़ो यात्रा का पूरा प्रभाव शायद आने वाले वर्षों में समझ में आएगा। लेकिन इतना स्पष्ट है कि इस यात्रा ने लोगों के भीतर कुछ बीज बो दिए हैं।

वे बीज हैं–
विश्वास के, संवाद के, साहस के और एक बेहतर भारत की उम्मीद के।

और शायद यही किसी भी बड़ी यात्रा की सबसे बड़ी सफलता होती है।

जय हिंद। जय जगत।

(मूल लेख) Mar 19, 2023 indianexpress.com

इस लेख को पढ़ने के बाद सामूहिक भागीदारी में चर्चा-परिचर्चा के विषय:--

"लोकतंत्र केवल वोट देने का अधिकार नहीं, बल्कि बिना डर अपनी बात कहने का साहस भी है।"

राजनीति समाज को जोड़ने, संवाद बनाने और लोगों को अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करने का माध्यम भी हो सकती है।

1. "भारत जोड़ो यात्रा": **एक राजनीतिक अभियान या जनआंदोलन था?**
2. **लोकतंत्र में** असहमति **और** संवाद **क्यों जरूरी है?**
3. "डरो मत" **का सामाजिक और राजनीतिक अर्थ क्या है?**
4. **राजनीति में** भावनात्मक जुड़ाव **कितना जरूरी है?**
5. यात्रा **और** जनसंवाद **समाज को जोड़ने का प्रभावी माध्यम है?**
6. **युवा,** लोकतंत्र **और** संवाद **को कैसे मजबूत कर सकते हैं?**

5.

एक भारत जोड़ो यात्री की डायरी
मेरी यात्रा और मैं

हजार किलोमीटर चलने के बाद अब मुझे इस यात्रा का अर्थ कुछ नया समझ आने लगा है। यह केवल पैदल चलने की यात्रा नहीं है, बल्कि अपने भीतर उतरने की एक प्रक्रिया है।

शुरुआत में मुझे लगा था कि यह यात्रा मुझे कुछ महीनों के लिए रोज़मर्रा की जिम्मेदारियों से दूर रहने का अवसर दे रही है। अधूरे लेख, लंबित बैठकें, प्रशासनिक काम, लोगों से किए वादे – सबको एक ही जवाब मिल जाता था –
"अभी नहीं... मैं यात्रा पर हूं... हां, वही भारत जोड़ो यात्रा..."

इसके बदले मुझसे केवल एक काम मांगा गया –
बस चलते रहो।
एक कदम आगे, फिर दूसरा कदम।
15,000 कदम, खाना, सोना... फिर अगले दिन वही दोहराना।

पहली नजर में यह बहुत साधारण लगा। लेकिन धीरे-धीरे समझ आया कि यह केवल शरीर की परीक्षा नहीं है। यह समय द्वारा आत्मा की परीक्षा है।

समय का सामना

कुछ दिनों बाद पैरों में छाले पड़ जाते हैं, फिर उन पर कठोर परत जम जाती है। सड़क की कठिनाई से शरीर खुद को बचा लेता है। लेकिन मन और आत्मा को समय की परीक्षा से बचाने के लिए कोई कवच नहीं होता।

समय आपको हर उस चीज़ से मुक्त करने लगता है जिसे आप मेहनत से पकड़कर बैठे होते हैं।

मेरी योजनाएं धीरे-धीरे टूटने लगीं।
कैसे चलना चाहिए, कितना पानी पीना चाहिए, सबको अनुशासित पंक्ति में कैसे चलाना है, हर

दिन गांधीजी के भजन और चरखे के साथ समाप्त करना है – ये सारी योजनाएं समय के सामने टिक नहीं पाईं।

भूमिका निभाने का अंत

यात्रा में हम कई भूमिकाएं निभाते हैं।
त्यागी कार्यकर्ता।
जोशीले नारे लगाने वाला साथी।
देश बदलने का सपना देखने वाला आदर्शवादी।
थके हुए पैरों के बावजूद झंडा उठाए चलने वाला योद्धा।

लेकिन समय धीरे-धीरे इन सभी मुखौटों को उतार देता है।

शुरुआत में लोगों का सम्मान, तस्वीरें, मीडिया में चर्चा और "त्याग" की प्रशंसा अच्छी लगती है। लेकिन समय के साथ इन सबका आकर्षण खत्म होने लगता है। फिर एहसास होता है कि हम कितनी सामाजिक औपचारिकताओं में जीते हैं।

कौन शक्तिशाली है, किसके साथ दिखना है, किन लोगों को अपना मानना है, किनसे दूरी बनानी है – ये सारी मानसिक दीवारें धीरे-धीरे टूटने लगती हैं।

और तब भीतर एक गहरी शांति की इच्छा जन्म लेती है।

जो चीज़ें समय से परे हैं

लेकिन यात्रा में कुछ अनुभव ऐसे भी हैं जिन्हें समय मिटा नहीं पाता।

रास्ते में बच्चों की चमकती आंखें और हाथ हिलाते हुए उनका उत्साह।
वृद्ध महिलाएं, जो सम्मान से सिर ढंककर हाथ जोड़ती हैं।
वह संकोची महिला, जो पहले हाथ नहीं हिलाती, लेकिन बार-बार आग्रह करने पर मुस्कुरा कर जवाब देती है।

ये छोटे-छोटे मानवीय संबंध ही यात्रा की सबसे बड़ी पूंजी बन जाते हैं।

चलना और यात्रा – दोनों अलग हैं

धीरे-धीरे मुझे समझ आने लगा कि “चलना” और “यात्रा” एक ही चीज़ नहीं हैं।

चलना केवल एक भौतिक क्रिया है।
उसका एक रास्ता होता है, एक योजना होती है, एक लक्ष्य होता है।

लेकिन यात्रा एक प्रवाह है।
वह अपने आप खुलती है।
वह हर कदम में मौजूद होती है।

चलने को किलोमीटर, भीड़, भाषण और खबरों में मापा जा सकता है।
लेकिन यात्रा को केवल अनुभव किया जा सकता है।

चलना बहुत कुछ इकट्ठा करता है –
जूते, झंडे, नारे, तस्वीरें, दोस्त और यादें।

लेकिन यात्रा बहुत कुछ छोड़ना सिखाती है –
डर, अहंकार, अपेक्षाएं, दिखावा और मोह।

लोगों से जुड़ने की असली शक्ति

चलना एक संदेश देता है।
उसमें रैलियां, नारे और भाषण होते हैं।

लेकिन यात्रा लोगों को स्वयं से जोड़ती है।

एक मुस्कान।
एक नजर।
एक हाथ हिलाना।
एक छोटा संवाद।

ये छोटे-छोटे संबंध केवल दो व्यक्तियों के बीच नहीं बनते, बल्कि पूरी मानवता को जोड़ने का माध्यम बनते हैं।

यात्रा अहंकार को घोल देती है

चलना व्यक्ति को बड़ा महसूस कराता है।
लेकिन यात्रा व्यक्ति के अहंकार को धीरे-धीरे समाप्त कर देती है।

चलना शुरू होता है और एक दिन खत्म हो जाता है।
लेकिन यात्रा शाश्वत होती है।

एक पैदल यात्रा राजनीतिक दलों को ऊर्जा दे सकती है, चुनाव जिता सकती है और कार्यकर्ताओं को प्रेरित कर सकती है।
लेकिन सच्ची यात्रा उससे कहीं बड़ी होती है।

जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था–

"अपने शांत और विनम्र तरीके से यात्रा पूरे ब्रह्मांड को हिला देती है।"

अंत में

भारत में ऐसी करोड़ों यात्राएं जन्म लें – ऐसी यात्राएं जो लोगों को जोड़ें, भीतर से बदलें और मानवता को नई दिशा दें।

जय हिंद। जय जगत।

21 NOV 2022 CONGRESS-SANDESH

इस लेख को पढ़ने के बाद सामूहिक भागीदारी में चर्चा-परिचर्चा के विषय:--

"सच्ची यात्रा बाहर की दूरी नहीं, भीतर की दूरी को तय करना है।"

चलना शरीर को आगे बढ़ाता है, लेकिन यात्रा आत्मा को बदल देती है। यात्रा केवल रास्ते तय नहीं करती, वह व्यक्ति को नया बनाती है।

1. "चलना" **और** "यात्रा" **में क्या अंतर है?**
2. **क्या यात्राएं** समाज **में वास्तवित** परिवर्तन **ला सकती हैं?**
3. **क्या संघर्ष और कठिनाई** अहंकार **को कम करते हैं?**
4. **क्या** जनआंदोलन **व्यक्ति को बदल सकते हैं?**
5. **राजनीति में** सेवा, त्याग **और** सामाजिक पहचान **जरूरी है?**

“जय जगत” का अर्थ

“जय जगत” हमें याद दिलाता है कि सच्चा राष्ट्रवाद दूसरों से घृणा करना नहीं, बल्कि पूरी मानवता के साथ जुड़ना है।

भारत की सबसे बड़ी ताकत उसकी विविधता, सह-अस्तित्व और संवाद की संस्कृति रही है।

यदि हम इन्हें बचाए रख सके, तभी हम वास्तव में राम के आदर्शों के करीब पहुंच पाएंगे।